

पातञ्जल योग दर्शन में ईश्वर की अवधारणा: एक दार्शनिक विश्लेषण

डॉ० हरि नारायण¹

प्राप्ति: 12 सितम्बर 2026 / स्वीकृत: 23 सितम्बर 2026 / प्रकाशित ऑनलाइन: 24 सितम्बर 2026

Copyright © 2026 Author(s). Published by Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution International License (CC BY 4.0).

सारांश

भारतीय दार्शनिक परंपरा में योग दर्शन एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक दर्शन है, जिसका मुख्य उद्देश्य मानव को शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक स्तर पर पूर्णता की ओर अग्रसर करना है। महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित योग दर्शन में ईश्वर की अवधारणा एक विशिष्ट स्थान रखती है। जहाँ सांख्य दर्शन सृष्टि की व्याख्या बिना ईश्वर के करता है, वहीं योग दर्शन ईश्वर को "पुरुषविशेष" के रूप में स्वीकार करता है। योग दर्शन में ईश्वर की स्वीकृति केवल दार्शनिक कल्पना नहीं है, बल्कि साधना की एक व्यावहारिक आवश्यकता के रूप में प्रस्तुत की गई है। महर्षि पतञ्जलि ने 'ईश्वर-प्रणिधान' को समाधि प्राप्ति का प्रभावी साधन माना है। साधक के लिए ईश्वर श्रद्धा, विश्वास, समर्पण तथा मानसिक एकाग्रता का सर्वोच्च आधार बनता है। इस प्रकार योग दर्शन में ईश्वर की अवधारणा धार्मिक आस्था से अधिक मनोवैज्ञानिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक अनुशासन का आधार बन जाती है।

प्रस्तुत शोध-आलेख में पातञ्जल योग दर्शन में प्रतिपादित ईश्वर की अवधारणा का दार्शनिक विश्लेषण किया गया है। इसमें पतञ्जलि के योगसूत्र के आधार पर ईश्वर के स्वरूप, विशेषताओं, ईश्वर-प्रणिधान की उपयोगिता तथा समकालीन संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि योग दर्शन का ईश्वर न केवल आध्यात्मिक उन्नति का आधार है, बल्कि आधुनिक तनावग्रस्त जीवन में मानसिक संतुलन एवं नैतिक विकास का भी प्रभावी माध्यम सिद्ध हो सकता है।

मुख्य शब्द: योग दर्शन, ईश्वर, पतञ्जलि, पुरुषविशेष, ईश्वर-प्रणिधान, समाधि।

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन का मूल उद्देश्य केवल सैद्धान्तिक ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि मनुष्य को दुःखों से मुक्त कर मोक्ष अथवा परम कल्याण की प्राप्ति कराना है। इसी कारण भारतीय दार्शनिक परंपरा के अधिकांश दर्शनों में आध्यात्मिक साधना तथा नैतिक जीवन को विशेष महत्व दिया गया है। षड्दर्शनों में योग दर्शन का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह मानव जीवन की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक समस्याओं का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है।

महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित योग दर्शन का मूल सूत्र है— "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।"¹ — योगसूत्र 1.2 अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। यह परिभाषा स्पष्ट करती है कि योग का लक्ष्य मनुष्य के चित्त को स्थिर

1 असिस्टेंट प्रोफेसर (सीनियर स्केल), दर्शनशास्त्र विभाग, बलि राम भगत कॉलेज, समस्तीपुर, बिहार

✉ डॉ० हरि नारायण, E-mail: harineelu1891@gmail.com

एवं निर्मल बनाकर उसे आत्म साक्षात्कार की ओर अग्रसर करना है। योग दर्शन की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह सांख्य दर्शन के अधिकांश तत्त्वों को स्वीकार करते हुए भी ईश्वर की सत्ता को मान्यता देता है। सांख्य दर्शन जहाँ केवल प्रकृति एवं पुरुष को स्वीकार करता है, वहीं योग दर्शन इनके अतिरिक्त "पुरुष विशेष" अर्थात् ईश्वर को भी स्वीकार करता है (Dasgupta, 1922/1975)²।

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार— **"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।"**³ — योगसूत्र 1.24 अर्थात् जो पुरुष क्लेश, कर्म, कर्मफल तथा संस्कारों से सर्वथा अछूता है, वही ईश्वर है। इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि योग दर्शन का ईश्वर न तो जगत का भौतिक उपादान कारण है और न ही कर्मों से बंधा हुआ कोई जीव, बल्कि वह क्लेश, कर्म, कर्मफल तथा संस्कारों से सर्वथा रहित, सर्वज्ञ, नित्य मुक्त एवं परम चेतना का स्वरूप है। यह सामान्य जीवात्मा से भिन्न एवं पूर्णतः मुक्त सत्ता है। योग दर्शन में ईश्वर की स्वीकृति का उद्देश्य किसी धार्मिक सम्प्रदाय की स्थापना नहीं है। पतञ्जलि ने ईश्वर को साधक के लिए आध्यात्मिक प्रेरणा, मानसिक स्थिरता तथा समाधि की प्राप्ति का एक साधन माना है। योगसूत्र में कहा गया है— **"ईश्वरप्रणिधानाद्वा।"**⁴ अर्थात् ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण द्वारा भी समाधि प्राप्त की जा सकती है। यही सूत्र योग दर्शन में ईश्वर की अवधारणा का आधार है। यह सूत्र योग दर्शन की व्यावहारिकता को स्पष्ट करता है। जहाँ अन्य साधन दीर्घकालीन अभ्यास की अपेक्षा रखते हैं, वहीं ईश्वर-प्रणिधान साधक के मन में श्रद्धा, भक्ति तथा समर्पण उत्पन्न कर चित्त की एकाग्रता को सहज बनाता है (Feuerstein, 2008)⁵।

वर्तमान काल में मानसिक तनाव, नैतिक द्वंद्व, गलाकाट प्रतिस्पर्धा तथा अस्तित्वगत असुरक्षा जैसी समस्याएँ निरंतर बढ़ रही हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने भौतिक जीवन को तो सरल बनाया है, किन्तु मानसिक अशांति की समस्या अभी भी चुनौती बनी हुई है। ऐसी परिस्थितियों में योग दर्शन में प्रतिपादित ईश्वर की अवधारणा केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं रहती, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य, आत्मविश्वास, नैतिक अनुशासन तथा आध्यात्मिक संतुलन का भी प्रभावी आधार बनती है। इस दृष्टि से योग दर्शन में ईश्वर की अवधारणा का दार्शनिक अध्ययन समकालीन परिदृश्य में अत्यन्त प्रासंगिक है।

योग दर्शन का स्वरूप एवं दार्शनिक आधार

योग दर्शन भारतीय आस्तिक दर्शनों में एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि सांख्य दर्शन पर आधारित है, किन्तु दोनों के मध्य एक मौलिक अंतर ईश्वर की स्वीकृति का है। सांख्य दर्शन ईश्वर को अनावश्यक मानता है, जबकि योग दर्शन ईश्वर को साधना की प्रक्रिया में आवश्यक एवं उपयोगी स्वीकार करता है (Radhakrishnan & Moore, 1957)⁶। सांख्य दर्शन में ईश्वर जैसी विलक्षण सत्ता को स्वीकार करने में कोई भी हेतु उपलब्ध नहीं है। प्रकृति में गुण-क्षोभ एवं सर्ग-प्रवर्तन पुरुष के कल्याण हेतु, उसकी नैसर्गिक प्रवृत्ति के कारण होता है। यह किसी अन्य नियामक सत्ता की प्रेरणा से नहीं होता। इसके अतिरिक्त जीव को सिद्ध करने में भी ईश्वर की कोई उपयोगिता सांख्य के आचार्यों को प्रतीत नहीं होती क्योंकि पुरुष अविवेक के कारण बंधन में पड़ता है और 25 तत्त्वों का भली-भांति ज्ञान होने पर उसका अविवेक मिट जाता है और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। योग दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण संसार प्रकृति एवं पुरुष के संयोग से संचालित होता है। प्रकृति जड़ है तथा पुरुष शुद्ध चेतन सत्ता है। जीवात्मा वास्तव में पुरुष ही है, किन्तु अविद्या के कारण वह स्वयं को प्रकृति के साथ अभिन्न मान बैठता है। इसी भ्रांति से बंधन एवं दुःख उत्पन्न होते हैं। योग साधना का उद्देश्य इस अज्ञान का निवारण कर पुरुष को उसके वास्तविक स्वरूप का बोध कराना है।

महर्षि पतञ्जलि ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अष्टाङ्ग योग मार्ग का प्रतिपादन किया है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। इन आठ अंगों में 'नियम' के अंतर्गत ईश्वर-प्रणिधान को विशेष महत्व दिया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि योग दर्शन में ईश्वर केवल दार्शनिक अवधारणा नहीं, बल्कि साधना का अभिन्न अंग है। दार्शनिक दृष्टि से योग दर्शन का ईश्वर सृष्टि का भौतिक कारण नहीं है, बल्कि वह परम गुरु, सर्वज्ञ एवं नित्य मुक्त चेतना है। इसी कारण योग दर्शन में ईश्वर का स्वरूप वेदान्त के ब्रह्म तथा सांख्य के पुरुष से समान होते हुए भी उनसे भिन्न माना गया है। यही विशेषता योग दर्शन को भारतीय दार्शनिक परंपरा में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

योग दर्शन में ईश्वर की अवधारणा

योग दर्शन भारतीय दार्शनिक परम्परा में ईश्वर की एक विशिष्ट एवं मौलिक अवधारणा प्रस्तुत करता है। यद्यपि इसका तात्त्विक आधार सांख्य दर्शन पर निर्मित है, तथापि ईश्वर की स्वीकृति इसे सांख्य से पृथक् एवं अधिक व्यावहारिक बनाती है। सांख्य दर्शन प्रकृति एवं पुरुष के अतिरिक्त किसी परम सत्ता को स्वीकार नहीं करता, जबकि योग दर्शन साधना की पूर्णता तथा चित्त की एकाग्रता के लिए ईश्वर को अनिवार्य आध्यात्मिक आधार मानता है। ईश्वर की सत्ता संबंधी इस मतभेद के कारण विद्वानों ने सांख्य को निरीश्वर तथा योग को सेश्वर कहा है। सांख्य के जिन परवर्ती आचार्यों ने (विज्ञानभिक्षु) ईश्वर की सत्ता को माना है, उन्होंने भी ईश्वर को योग दर्शन के ही अर्थ में विशेष पुरुष माना है जो सर्वज्ञ और मुक्त है। मूल सांख्य दर्शन (ईश्वरकृष्ण रचित सांख्यकारिका) में कुल 25 तत्व ही स्वीकार किये गये हैं।

महर्षि पतञ्जलि के योग दर्शन में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने के केवल दो कारण दिखलाई पड़ते हैं। एक तो यह कि चित्त के समाधिस्थ होने में ईश्वर-प्रणिधान उपयोगी है और दूसरा सृष्टि के पुनः प्रारंभ होने पर जीव को उसके मोक्ष के लिए ज्ञान का उपदेश केवल एक ऐसी सत्ता द्वारा हो सकता है जो सदैव मुक्त हो, सर्वज्ञ हो, ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियों से संपन्न हो। ईश्वर ही योग का प्रथम वक्ता है। इन दोनों कारणों से योग दर्शन में ईश्वर की सत्ता को स्थान दिया गया है। स्पष्ट है कि योग दर्शन की दृष्टि में ईश्वर का उतना सैद्धांतिक मूल्य नहीं है जितना उसका व्यावहारिक मूल्य है।⁷

योग दर्शन में ईश्वर वह पुरुष विशेष है जो अविद्या, अस्मिता आदि पंच क्लेशों, कर्म, कर्मफल तथा संस्कारों से सर्वथा अछूता है अर्थात् वह अन्य पुरुषों से असमान है। ईश्वर नित्य मुक्त है, वह बद्ध और मुक्त दोनों पुरुषों से भिन्न है क्योंकि मुक्त पुरुष भी कभी बंधन में था। ईश्वर से अधिक ज्ञान और क्रिया से संपन्न कोई अन्य पुरुष विश्व में नहीं है। “सत्त्वजन्य शाश्वतिक उत्कर्ष के कारण ईश्वर सदा अनादि विवेक-ख्याति से संपन्न रहते हैं, जिसके कारण वे चिरकाल से मुक्त है तथा सदैव मुक्त रहेंगे।”⁸

निरतिशय ज्ञान से परिपूर्ण होने के कारण सर्ग के पुनः प्रारंभ होने पर ईश्वर सब भूत प्राणियों के कल्याण हेतु ज्ञान का उपदेश देता है। यहाँ ईश्वर को न तो किसी धार्मिक सम्प्रदाय के देवता के रूप में प्रस्तुत किया गया है और न ही सृष्टिकर्ता के रूप में। पतञ्जलि का ईश्वर एक ऐसी शुद्ध चेतना है जो कभी अज्ञान, दुःख, कर्म अथवा पुनर्जन्म के बंधन में नहीं आती। वह नित्य मुक्त, सर्वज्ञ तथा पूर्ण चेतन सत्ता है।

इस प्रकार योग दर्शन का ईश्वर सामान्य जीवात्मा से गुणात्मक रूप से भिन्न है। जीवात्मा भी चेतन है, किन्तु वह अविद्या के कारण बंधन में रहती है; जबकि ईश्वर कभी बंधन में नहीं आता। इसी कारण उसे “पुरुष विशेष” कहा गया है। योग दर्शन में “पुरुष विशेष” शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका तात्पर्य है—ऐसा पुरुष जो समस्त दोषों एवं सीमाओं से परे है। सामान्य जीवात्मा अनेक प्रकार के क्लेशों से ग्रस्त रहती है, जबकि ईश्वर इन सब से सर्वथा मुक्त है।

पतञ्जलि ने पाँच प्रमुख क्लेशों का उल्लेख किया है⁹— 1. अविद्या, 2. अस्मिता, 3. राग, 4. द्वेष, 5. अभिनिवेश। ये पाँचों क्लेश जीव को संसार के बंधनों में बाँधे रखते हैं। इनके कारण मनुष्य कर्म करता है, कर्मों का फल प्राप्त करता है तथा पुनर्जन्म के चक्र में फँस जाता है। इसके विपरीत ईश्वर इन सभी क्लेशों से रहित है। अतः उसमें न दुःख है, न अज्ञान, न कर्मबंधन और न पुनर्जन्म।

दार्शनिक दृष्टि से यह अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे ईश्वर की पूर्ण स्वतंत्रता (Absolute Freedom) सिद्ध होती है। योग दर्शन के अनुसार यदि ईश्वर भी कर्मों से बंधा होता, तो वह साधकों के लिए आदर्श नहीं बन सकता था। इसलिए ईश्वर को सर्वथा मुक्त एवं नित्य सिद्ध सत्ता माना गया है। ईश्वर साधकों की योग सिद्धि में सहायता करता है। योग सिद्धि के मार्ग में जो मानसिक रुकावटें आती हैं उन्हें ईश्वर दूर करता है। वस्तुतः योग दर्शन की कठिन साधना, जिसके साथ कठोर शारीरिक क्रियाएं तथा मानसिक अनुशासन जुड़ा हुआ है, एक मार्गदर्शक तथा सहायक चाहती है, जो साधक को इस कठिन मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करे और संबल प्रदान करे। योग दर्शन में ऐसे सम्प्रत्यय को ईश्वर के साथ संयुक्त कर दिया गया। पतञ्जलि ने योगसूत्र में ईश्वर के अनेक विशिष्ट गुणों का उल्लेख किया है। ये गुण ईश्वर को अन्य समस्त जीवों से पृथक् सिद्ध करते हैं।

1. नित्य मुक्त

ईश्वर कभी भी संसार के बंधनों में नहीं पड़ता। जीवात्मा अज्ञान के कारण जन्म-मरण के चक्र में रहती है, जबकि ईश्वर सदा मुक्त है।

2. सर्वज्ञ

पतञ्जलि कहते हैं—

"तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्"¹⁰ (योगसूत्र 1.25)

अर्थात् ईश्वर में सर्वज्ञता का बीज सर्वोच्च रूप में विद्यमान है। यहाँ सर्वज्ञता का अर्थ केवल अधिक ज्ञान होना नहीं है, बल्कि ऐसा पूर्ण एवं अखण्ड ज्ञान है जिसमें किसी प्रकार की सीमा नहीं रहती। योग दर्शन के अनुसार समस्त सत्य का प्रत्यक्ष एवं पूर्ण ज्ञान केवल ईश्वर को ही है।

3. आदिगुरु

योगसूत्र में कहा गया है—

"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"¹¹ (योगसूत्र 1.26)

अर्थात् ईश्वर काल से परे होने के कारण प्राचीनतम गुरुओं का भी गुरु है।

यह सूत्र अत्यंत गहन दार्शनिक अर्थ रखता है। मनुष्य का ज्ञान समय के साथ विकसित होता है, किन्तु ईश्वर का ज्ञान कालातीत है। इसलिए समस्त ऋषियों एवं मुनियों के ज्ञान का अंतिम स्रोत ईश्वर ही माना गया है। व्यासभाष्य में भी ईश्वर को आदि-आचार्य तथा समस्त ज्ञान का मूल स्रोत कहा गया है।

4. कालातीत सत्ता

ईश्वर समय, स्थान तथा परिवर्तन की सीमाओं से परे है। मनुष्य का अस्तित्व जन्म, वृद्धि, परिवर्तन तथा मृत्यु से जुड़ा है, जबकि ईश्वर इन सभी परिवर्तनों से रहित है। इसलिए योग दर्शन का ईश्वर शाश्वत एवं अपरिवर्तनशील सत्ता है।

5. पूर्ण चेतना

योग दर्शन के अनुसार ईश्वर शुद्ध चेतना (Pure Consciousness) है। वह न शरीर है, न मन है, न बुद्धि है और न अहंकार। वह इन सबका साक्षी है। इसी कारण योग दर्शन का ईश्वर किसी भौतिक स्वरूप का मोहताज नहीं है। उसकी वास्तविक सत्ता आध्यात्मिक है।

6. ईश्वर और प्रणव (ॐ)

पतञ्जलि ने ईश्वर के वाचक (नाम) के रूप में प्रणव अर्थात् ॐ को स्वीकार किया है।

"तस्य वाचकः प्रणवः।"¹² (योगसूत्र 1.27)

अर्थात् ईश्वर का वाचक प्रणव (ॐ) है। इसके बाद वे कहते हैं—

"तज्जपस्तदर्थभावनम्"¹³ (योगसूत्र 1.28)

अर्थात् ॐ का जप तथा उसके अर्थ का निरन्तर चिन्तन करना चाहिए। योग दर्शन में ॐ केवल ध्वनि नहीं है, बल्कि वह ईश्वर का प्रतीक है। ॐ का जप साधक के चित्त को एकाग्र करता है तथा मानसिक विक्षेपों को शांत करता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में भी ध्यान एवं मंत्र-जप को मानसिक तनाव कम करने तथा एकाग्रता बढ़ाने में सहायक माना गया है।¹⁴

ईश्वर-प्रणिधान का दार्शनिक विश्लेषण

महर्षि पतञ्जलि ने योगमार्ग में ईश्वरप्रणिधान को अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन माना है। योगसूत्र में स्पष्ट कहा गया है—
"ईश्वरप्रणिधानाद्वा।" (योगसूत्र 1.23)

यह सूत्र अत्यन्त संक्षिप्त होते हुए भी गहन दार्शनिक अर्थ रखता है। यहाँ "वा" शब्द यह संकेत करता है कि चित्तवृत्ति-निरोध और समाधि की प्राप्ति के अनेक उपाय हैं, परन्तु ईश्वर-प्रणिधान भी एक प्रभावी एवं स्वतंत्र साधन है। इससे स्पष्ट होता है कि पतञ्जलि ईश्वर को केवल दार्शनिक सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि साधना की व्यावहारिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग मानते हैं। 'प्रणिधान' का सामान्य अर्थ समर्पण, निष्ठा या पूर्ण एकाग्रता है। योग दर्शन में इसका आशय किसी बाह्य

कर्मकाण्ड तक सीमित नहीं है, बल्कि अपने अहंकार, फलासक्ति, भय, राग-द्वेष तथा मानसिक अशान्ति को ईश्वर के प्रति समर्पित कर देना है। सभी कर्मों को ईश्वर को अर्पित करके सदैव उनकी भावना में रत रहना ईश्वर-प्रणिधान है। इस प्रकार ईश्वरप्रणिधान के तीन प्रमुख आयाम हैं—

1. श्रद्धा – ईश्वर के अस्तित्व और उसकी पूर्णता में विश्वास।
2. समर्पण – व्यक्तिगत अहंकार का त्याग।
3. निरन्तर स्मरण – ध्यान, जप और मनन के माध्यम से ईश्वर को चित्त का केन्द्र बनाना।

जब साधक अपने सीमित अहंकार से ऊपर उठकर ईश्वर में चित्त को स्थिर करता है, तब मानसिक विक्षेप स्वतः कम होने लगते हैं। इसलिए ईश्वरप्रणिधान केवल धार्मिक अभ्यास नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक अनुशासन है।

पतञ्जलि ने अष्टाङ्गयोग में पाँच नियम बताए हैं—

1. शौच
2. सन्तोष
3. तप
4. स्वाध्याय
5. ईश्वरप्रणिधान (योगसूत्र 2.32)

इन पाँचों में ईश्वरप्रणिधान अंतिम नियम है, जो साधना को आध्यात्मिक दिशा प्रदान करता है।

योगसूत्र (2.45) में कहा गया है— "समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।"¹⁵

अर्थात् ईश्वरप्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है। यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि जब साधक अपनी समस्त मानसिक ऊर्जा को ईश्वर के प्रति समर्पित कर देता है, तब चित्त की चंचलता समाप्त होकर गहन एकाग्रता उत्पन्न होती है। यही एकाग्रता समाधि का आधार बनती है। इससे चित्त के संशय, प्रमाद आदि विक्षोभ नष्ट हो जाते हैं। इसके अभ्यास से चित्त संप्रज्ञात समाधि को प्राप्त हो जाता है।¹⁶

योग दर्शन में ईश्वर की स्वीकृति केवल समाधि प्राप्ति तक सीमित नहीं है। इसका गहरा सम्बन्ध नैतिक जीवन से भी है। ईश्वरप्रणिधान के कारण—

- सत्य के प्रति निष्ठा विकसित होती है।
- अहंकार का ह्रास होता है।
- करुणा और मैत्री की भावना बढ़ती है।
- आत्मसंयम सुदृढ़ होता है।
- कर्तव्यपालन में स्थिरता आती है।

इस प्रकार ईश्वर की अवधारणा व्यक्ति के नैतिक व्यक्तित्व के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

निष्कर्ष

योग दर्शन में ईश्वर की अवधारणा भारतीय दर्शन की एक मौलिक एवं विशिष्ट देन है। महर्षि पतञ्जलि ने ईश्वर को न तो केवल धार्मिक आस्था का विषय माना और न ही केवल सृष्टिकर्ता के रूप में प्रस्तुत किया, बल्कि उसे "पुरुष विशेष" के रूप में परिभाषित किया—जो क्लेश, कर्म, कर्मफल और संस्कारों से सर्वथा रहित, नित्य मुक्त, सर्वज्ञ तथा कालातीत चेतना है। ईश्वर-प्रणिधान को योगमार्ग में विशेष स्थान देकर पतञ्जलि ने यह स्पष्ट किया कि आध्यात्मिक उन्नति केवल बौद्धिक ज्ञान से नहीं, बल्कि श्रद्धा, समर्पण और निरन्तर साधना से सम्भव है। उन्होंने चित्तशुद्धि, चित्त की एकाग्रता एवं समाधि की उपलब्धि के लिए ईश्वर-प्रणिधान को उपयोगी मानकर ईश्वर की आवश्यकता पर बल दिया। योग सूत्र में ईश्वर की उपयोगिता ईश्वर-प्रणिधान या ईश्वर-भक्ति में है। योग दर्शन का ईश्वर साधक को आत्मानुशासन, मानसिक एकाग्रता, नैतिक दृढ़ता तथा आध्यात्मिक प्रेरणा प्रदान करता है।

दार्शनिक दृष्टि से योग दर्शन ने सांख्य की तत्त्वमीमांसा को स्वीकार करते हुए ईश्वर को साधना का व्यावहारिक आधार बनाया। यही इसकी मौलिकता है। वर्तमान समय में, जब मानसिक तनाव, नैतिक संकट और अस्तित्वगत

अस्थिरता बढ़ रही है, तब योग दर्शन की यह अवधारणा केवल दार्शनिक चर्चा का विषय नहीं रह जाती, बल्कि जीवनोपयोगी मार्गदर्शन भी प्रदान करती है। अतः यह कहा जा सकता है कि योग दर्शन का ईश्वर किसी संकीर्ण धार्मिक धारणा का प्रतीक नहीं, बल्कि सार्वभौमिक चेतना, आध्यात्मिक अनुशासन तथा मानव कल्याण की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि है।

संदर्भ:

1. योगसूत्र 1.2, स. हरिकृष्णदास गोयन्दका. (2019). *पातञ्जल योग दर्शन*. गोरखपुर: गीताप्रेस.
2. Dasgupta, S. (1975). *A History of Indian Philosophy (Vol. 1)*. Motilal Banarsidass. (Original work published 1922).
3. योगसूत्र 1.24
4. योगसूत्र 1.23.
5. Feuerstein, G. (2008). *The Yoga Tradition*. Arizona: Hohm Press.
6. Radhakrishnan, S., & Moore, C. A. (1957). *A Source Book in Indian Philosophy*. Princeton University Press.
7. पाण्डेय, संगमलाल (2000). *भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण*, इलाहाबाद: सेंट्रल पब्लिशिंग हाउस. पृष्ठ 253.
8. वही, पृष्ठ 253.
9. योगसूत्र 2.3
10. योगसूत्र 1.25
11. योगसूत्र 1.26
12. योगसूत्र 1.27
13. योगसूत्र 1.28
14. Feuerstein, G. (2008). *The Yoga Tradition*. Arizona: Hohm Press.
15. योगसूत्र 2.45
16. पाठक, राममूर्ति (2009). *भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा*, इलाहाबाद: अभिमन्यु प्रकाशन. पृष्ठ 46.